सद्गति

मुंशी प्रेमचन्द

सर्च - राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा

मुंशी प्रेमचन्द

31 जुलाई, 1880 को लमही गाँव (वाराणसी) में प्रेमचन्द का जन्म हुआ। उनका नाम धनपत राय था। उनके चाचा ने उन्हें नवाबराय नाम दिया। जब प्रेमचन्द मैट्रिक में पढ़ते थे तभी से लिखने लगे थे। उनका बचपन घनघोर ग़रीबी और दु:ख में कटा। 1901–02 में उनके दो उपन्यास 'हम खुरमा' और 'हमसवाब' छपे। प्रेमचन्द ने पहले उर्दू में लिखना शुरू किया, बाद में वे हिन्दी में लिखने लगे।

उनकी पहली कहानी उर्दू मासिक 'संसार का सबसे अनमोल रतन' 'ज़माना' में प्रकाशित हुई। 1910–11 में उनका 'सोज़े वतन' नामक उपन्यास जब्त कर लिया गया। हमीरपुर के कलक्टर द्वारा 'सोज़े वतन' की 600 प्रतियाँ प्रेमचन्द के सामने जला दी गईं। इसीलिए उन्हें अपना नाम नवाबराय बदलना पड़ा। जमाना के सम्पादक दयानारायण निगम ने उन्हें 'प्रेमचन्द' नाम दिया। 1913–14 में उनका उपन्यास सेवासदन छपा। 1920 में प्रेमचन्द ने गाँधी जी के आह्वान पर सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। 1930 में प्रेमचन्द ने हँस मासिक निकाला। अंग्रेज़ी सरकार बार–बार उस पर प्रतिबन्ध लगा देती थी और प्रेमचन्द बार–बार जमानत भरते थे। प्रेमचन्द ने सरस्वती प्रेस चलाई, घाटे उठाये और स्वाधीनता आन्दोलन की दिशा में काम करते रहे।

1934 में प्रेमचन्द बम्बई गए। उनकी कहानी पर 'मिल मज़दूर' फिल्म बनी उस पर भी बम्बई सरकार ने पाबन्दी लगा दी। इस फिल्म में एक पंचायत भी थी और पंचायत के प्रधान की भूमिका प्रेमचन्द ने अदा की थी। 1935 में प्रेमचन्द वापिस बनारस लौट आए। 1935 में उनका उपन्यास 'गोदान' छपा जिसमें ग़रीब किसान के कर्जे और दु:खों की गाथा है।

प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में वह ग़रीब किसान आया है जिसकी ज़मीन गिरवी रखी गयी या बिक गई, या जो कर्जे से दबा है और मज़दूरी तलाश करता है।

प्रेमचन्द ने 300 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। समकालीन विषयों पर अनेक सामाजिक, राजनीतिक टिप्पणियाँ लिखी हैं। सेवासदन, निर्मला, ग़बन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान उनके उपन्यास हैं। उनका उपन्यास मंगलसूत्र अधूरा ही रह गया। प्रेमचन्द ने आम बोलचाल की भाषा में लिखा है। उन्होंने हिन्दी कहानी को, दुनिया की बेहतरीन कहानियों में जगह दिलाई। उन्हें हिन्दुस्तान का मैक्सिम गोर्की कहा जाता है। सभी देशप्रेमियों को प्रेमचन्द का साहित्य ज़रूर पढ़ना चाहिये। उन्हें पढ़े बिना हिन्दुस्तान के ग्रामीण समाज को नहीं समझा जा सकता।

उनका देहान्त 8 अक्तूबर, 1936 को हुआ। ग़रीबी, संघर्ष और तनावों ने 56 वर्ष की आयु में ही प्रेमचन्द की जान ले ली।

सद्गति

(कहानी)

मुंशी प्रेमचन्द

प्रथम संस्करण : मार्च, 2002, 1000 प्रतियाँ

परामर्श : शुभा

सम्पादन : अविनाश सैनी

सम्पादकीय सहकर्मी : नरेश प्रेरणा
प्रूफ संशोधन : मनीषा

प्रोडक्शन : अविनाश सैनी, सुभाष

चित्रांकन एवं आवरण : कैरेन हेडॉक

मुद्रक : सर्वहितकारी मुद्रणालय, दयानन्द मठ, रोहतक।
प्रकाशक : 'सर्च' – राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा।

Sadgati : *A Story by Munshi Prem Chand*

सम्पर्क :

'सर्च' – राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा

42/29, चाणक्यपुरी, नज़दीक शीला सिनेमा, सोनीपत रोड, रोहतक–124001

फोन : 01262–44916, 57371

दो शब्द

प्रेमचन्द आज़ादी के आन्दोलन के दौर के लेखक हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेने के लिए उस दौर में यह महसूस किया गया कि अपने समाज में फैली बुराइयों को दूर किया जाए, क्योंकि अपने समाज के अन्यायमूलक ढाँचों की निर्मम समीक्षा करते हुए ही आज़ादी और न्याय की लड़ाई लड़ी जा सकती है। समाज सुधार, नवजागरण या नए शिक्षित जागरूक समाज की तस्वीर बनाने के लिए एक आत्मसंघर्ष ज़रूरी है। हमें अपने समाज की कमज़ोरियों को दूर करना ही होगा।

इसी आत्मसंघर्ष से गुज़रते हुए प्रेमचन्द ने सद्गति जैसी कहानियाँ लिखी हैं। ये कहानियाँ दुनिया की बेहतरीन कहानियों में बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं। 'सद्गति' पर सत्यजित रे जैसे महान फिल्म निर्देशक फिल्म बना चुके हैं। फिल्म में दुखी चमार की भूमिका ओमपुरी ने और झुरिया की भूमिका स्मिता पाटिल ने निभाई थी।

इस कहानी में सबसे ज़्यादा विडम्बना की बात यह है कि दुखी चमार का मन अत्याचारी के प्रति विभाजित है। वह स्वयं पंडितजी को 'तेजस्वी मूर्ति' की तरह देखता है। वह स्वयं सोचता है कि उसने ब्राह्मण का घर 'अपवित्तर' कर दिया है। इस विडम्बना को, इस विभाजन को दूर करके हम न्याय और अन्याय के पक्षों को साफ-साफ देखना और समझना सीखें, यह हमारा इस दौर का मुख्य काम है। नवपाठक और पढ़े-लिखे समझदार, दोनों के हिस्से में यह काम आता है। यह किताब छापकर हम स्वयं भी इस सम्मिलित ज़िम्मेदारी में शामिल हो रहे हैं।

प्रमोद गौरी,
निदेशक,
'सर्च' - राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा।

सद्गति

मुंशी प्रेमचन्द

दुखी चमार द्वार पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया, घर को गोबर से लीप रही थी। दोनों अपने-अपने काम से फ़ुर्सत पा चुके, तो चमारिन ने कहा - 'तो जाके पंडित बाबा से कह आओ न। ऐसा न हो कहीं चले जायें।'

दुखी - 'हाँ जाता हूँ, लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर ?'

झुरिया - 'कहीं से खटिया न मिल जायगी ? ठकुराने से माँग लाना।'

दुखी - 'तू भी कभी-कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है। ठकुराने वाले मुझे खटिया देंगे ! आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे ! कैथाने में जा कर एक लोटा पानी माँगूँ तो न मिले। भला खटिया कौन देगा ! हमारे उपले, **सेंठे**, भूसा, लकड़ी थोड़े ही हैं कि जो चाहे उठा ले जायँ। यह अपनी खटोली ही धो कर रख दे। गरमी के तो दिन हैं। उन के आते-आते सूख जायेगी।'

झुरिया - 'वह हमारी खटोली पर बैठेंगे नहीं। देखते नहीं कितने नेम-धरम से रहते हैं।'

दुखी ने ज़रा चिंतित हो कर कहा - 'हाँ, यह बात तो है। महुए के पत्ते तोड़ कर एक पत्तल बना लूँ तो ठीक हो जाय। पत्तल में बड़े-बड़े आदमी खाते हैं। वह पवित्तर है। ला तो डंडा, पत्ते तोड़ लूँ।'

झुरिया - 'पत्तल मैं बना लूँगी, तुम जाओ। लेकिन हाँ, उन्हें सीधा भी तो देना होगा। अपनी थाली में रख दूँ।'

दुखी - 'कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाय और थाली भी फूटे ! बाबा थाली उठा कर पटक देंगे। उनको बड़ी जल्दी किरोध चढ़ आता है। किरोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं। लड़के को ऐसा पीटा था कि आज तक टूटा हाथ लिये फिरता

सेंठें – सरकंडों के निचले हिस्से

है। सीधा भी पत्तल में ही देना, हाँ। ***मुदा*** तू छूना मत। झूरी गोंड़ की लड़की को लेकर साह की दुकान से सब चीजें ले आना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आध सेर चावल, पाव भर दाल, आध पाव घी, नोन और हल्दी। पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे भी रख देना। गोंड़ की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़ कर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नहीं तो गजब हो जाएगा।

इन बातों की ***ताकीद*** कर के दुखी ने लकड़ी उठाई और

मुदा - लेकिन, मतलब यह है कि
ताकीद करना - हिदायत देना

घास का एक बड़ा-सा गट्ठा लेकर पंडितजी से अर्ज़ करने चला। खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता ! और नज़राने के लिए घास के सिवाय उसके पास और था भी क्या ! खाली देखकर तो बाबा उसे दूर ही से दुत्कार देते।

पंडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईश-उपासना में लग जाते। मुँह-हाथ धोते आठ बज जाते। तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी था। उसके बाद आध घण्टे तक चन्दन रगड़ते। फिर आइने के सामने एक तिनके से माथे पर तिलक लगाते। चन्दन की दो रेखाओं के बीच में लाल रोरी की बिन्दी होती थी। फिर छाती और बाहों पर चन्दन की गोल-गोल मुद्रिकाएँ बनाते। उसके बाद ठाकुरजी की मूर्ति निकाल कर उसे नहलाते, चन्दन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घण्टी बजाते। दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते। तब तक दो-चार जजमान द्वार पर आ जाते ! ईश-उपासना का तत्काल फल मिल जाता। वही उनकी खेती थी।

आज वह पूजन-गृह से निकले, तो देखा दुखी चमार घास का एक गट्ठा लिये बैठा है। दुखी उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और साष्टांग दंडवत् करके हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। यह तेजस्वी मूर्ति देख कर उसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया। कितनी दिव्य मूर्ति

थी ! छोटा-सा गोल-मटोल आदमी, चिकना सिर, फूले गाल, ब्रह्मतेज से ***प्रदीप्त*** आँखें ! रोरी और चन्दन देवताओं की ***प्रतिमा*** प्रदान कर

प्रदीप्त - जगमगाता हुआ
प्रतिमा - तस्वीर

रही थी। दुखी को देखकर श्रीमुख से बोले – 'आज कैसे चला आया रे दुखिया ?'

दुखी ने सिर झुका कर कहा – 'बिटिया की सगाई कर रहा हूँ महाराज। कुछ ***साइत***-सगुन विचारना है। कब मर्जी होगी ?'

घासी – 'आज मुझे छुट्टी नहीं। हाँ, साँझ तक आ जाऊँगा।'

दुखी – 'नहीं महाराज, जल्दी मर्जी हो जाय। सब सामान ठीक कर आया हूँ। यह घास कहाँ रख दूँ ?'

घासी – 'इसे गाय के सामने डाल दे और ज़रा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ़ कर दे। यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई। इसे भी गोबर से लीप दे। तब तक मैं भोजन कर लूँ। फिर ज़रा आराम करके चलूँगा। हाँ, यह लकड़ी भी चीर देना। खलिहान में चार ***खाँची*** भूसा पड़ा है। उसे भी उठा लाना और भुसौली में रख देना।'

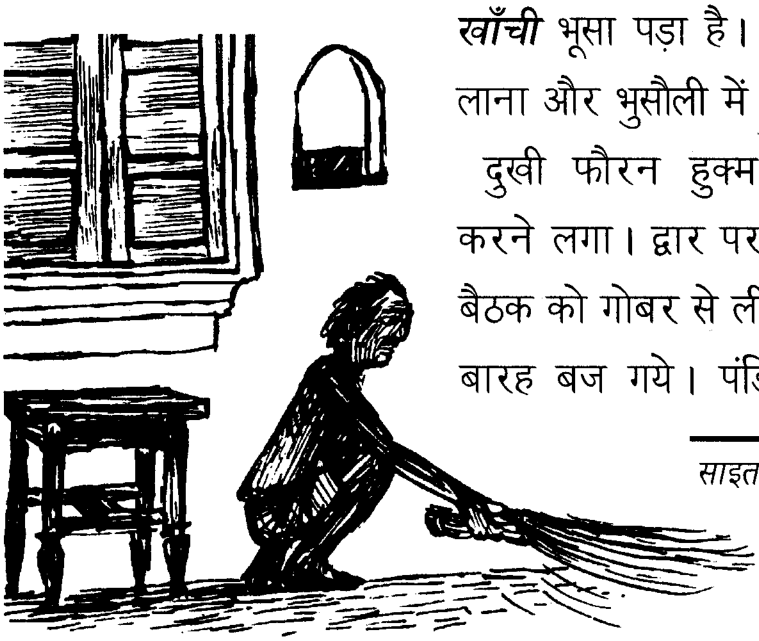

दुखी फौरन हुक्म की तामील करने लगा। द्वार पर झाड़ू लगाई, बैठक को गोबर से लीपा। तब तक बारह बज गये। पंडितजी भोजन

साइत – लगन, मुहूर्त
खाँची – टोकरी

करने चले गये। दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। उसे भी ज़ोर की भूख लगी थी। पर वहाँ खाने को धरा ही क्या था! घर यहाँ से मील भर था। वहाँ खाने चला जाये, तो पंडितजी बिगड़ जायें। बेचारे ने भूख दबाई और लकड़ी फाड़ने लगा। लकड़ी की मोटी-सी गाँठ थी, जिस पर पहले कितने ही भक्तों ने अपना ज़ोर आज़मा लिया था। वह उसी दम-खम के साथ लोहे से लोहा लेने के लिए तैयार थी। दुखी घास छीलकर बाज़ार ले जाता था। लकड़ी चीरने का उसे अभ्यास न था। घास उसके खुरपे के सामने सिर झुका देती थी। यहाँ कस-कस कर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ लगाता। पर उस गाँठ पर निशान तक न पड़ता था। कुल्हाड़ी उचट जाती। पसीने से तर था, हाँफता था, थककर बैठ जाता था, फिर उठता था। हाथ उठाये न उठते थे। पाँव काँप रहे थे। कमर सीधी न होती थी। आँखों तले अँधेरा हो रहा था। सिर में चक्कर आ रहे थे, तितलियाँ उड़ रही थीं। फिर भी वह अपना काम किये जाता था। अगर एक चिलम

तम्बाकू पीने को मिल जाती, तो शायद कुछ ताकत आ जाती। उसने सोचा, 'यहाँ चिलम और तमाखू कहाँ मिलेगी। बाह्मनों का पूरा है। बाह्मन लोग हम नीच जातों की तरह तमाखू थोड़े ही पीते हैं।' सहसा उसे याद आया कि गाँव में एक गोंड़ भी रहता है। 'उसके यहाँ जरूर चिलम-तमाखू होगी।' तुरत उसके घर दौड़ा। खैर मेहनत सुफल हुई। उसने तमाखू भी दी और चिलम भी दी, पर आग वहाँ न थी। दुखी ने कहा – 'आग की चिन्ता न करो भाई। मैं जाता हूँ, पंडितजी के घर से आग माँग लूँगा। वहाँ तो अभी रसोई बन रही थी।'

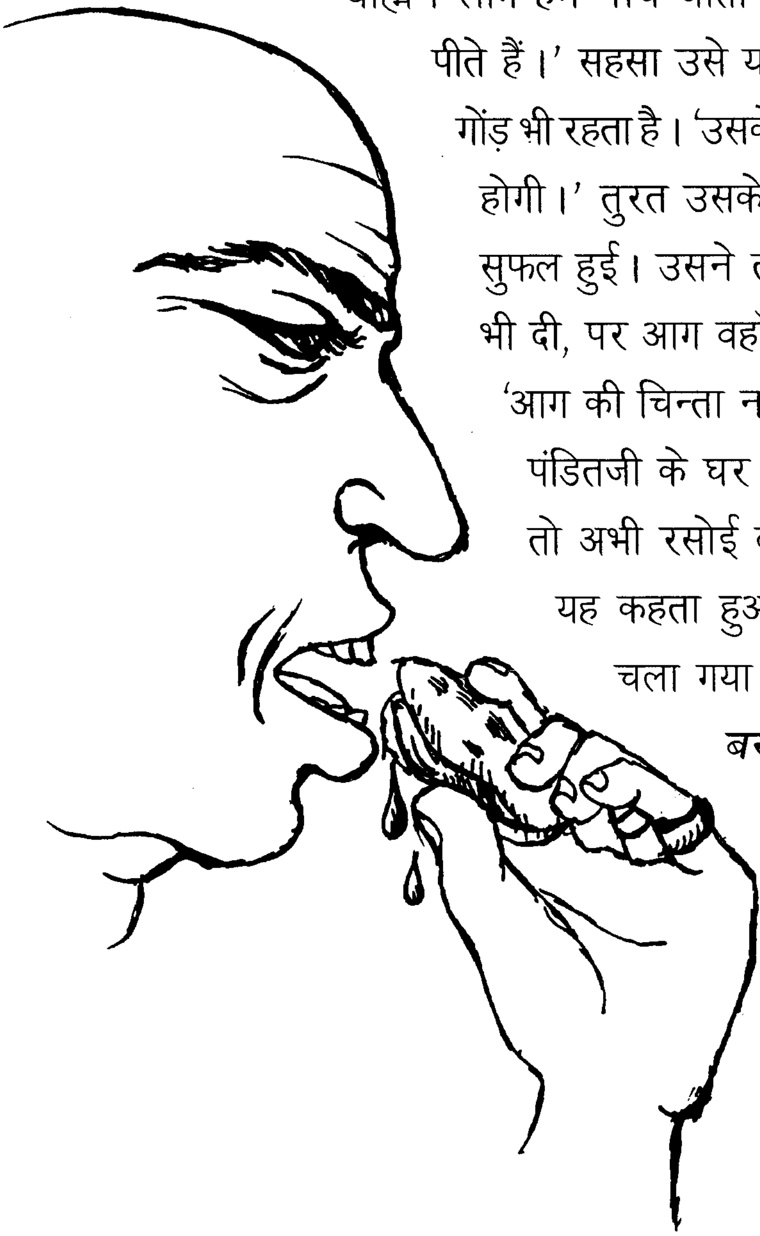

यह कहता हुआ वह दोनों चीज़ें लेकर चला गया और पंडितजी के घर में ***बरौठे*** के द्वार पर खड़ा होकर बोला – 'मालिक, ***रचिके*** आग मिल जाय, तो चिलम पी लें।'

पंडित जी भोजन कर रहे थे। पंडिताइन ने

बरौठे – बैठक
रचिके – ज़रा सा

पूछा – 'यह कौन आदमी आग माँग रहा है ?'

पंडित – 'अरे वही ससुरा दुखिया चमार है। कहा है थोड़ी-सी लकड़ी चीर दे। आग तो है, दे दो।'

पंडिताइन ने भवें चढ़ाकर कहा – 'तुम्हें तो जैसे पोथी-पत्रे के फेर में धरम-करम किसी बात की सुधि नहीं रही। चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुँह उठाये घर में चला आये। हिन्दू का घर न हुआ, कोई सराय हुई। कह दो ***दाढ़ीजार*** से चला जाय, नहीं तो इस ***लुआठे*** से मुँह झुलस दूँगी। आग माँगने चले हैं !'

पंडितजी ने उन्हें समझाकर कहा – 'भीतर आ गया, तो क्या हुआ ! तुम्हारी कोई चीज़ तो नहीं छुई। धरती पवित्र है। ज़रा सी आग दे क्यों नहीं देती, काम तो हमारा ही कर रहा है। कोई ***लोनियाँ*** यही लकड़ी फाड़ता, तो कम से कम चार आने लेता।'

पंडिताइन ने गरज कर कहा – 'वह घर में आया ही क्यों ?'

पंडित ने हार कर कहा – 'ससुरे का अभाग था, और क्या!'

पंडिताइन – 'अच्छा, इस बखत तो आग दिये देती हूँ, लेकिन फिर जो इस तरह घर में आयेगा, तो उसका मुँह ही जला दूँगी।'

दुखी के कानों में इन बातों की भनक पड़ रही थी। पछता रहा था, 'नाहक आया। सच तो कहती हैं। पंडित के घर में चमार

दाढ़ीजार – एक तरह की गाली, *लुआठे* – जलती हुई लकड़ी
लोनियाँ – नमक बनाने और बेचने का धन्धा करने वाली एक जाति

कैसे चला आये। बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग। तभी तो संसार पूजता है। तभी तो इतना मान है। भर-चमार थोड़े ही हैं। इसी गाँव में बूढ़ा हो गया, मगर मुझे इतनी अकल भी न आई।'

इसलिए जब पंडिताइन आग लेकर निकलीं, तो वह मानो स्वर्ग का वरदान पा गया। दोनों हाथ जोड़कर ज़मीन पर माथा टेकता हुआ बोला – 'पंडिताइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई कि घर में चला आया। चमार की अकल तो ठहरी। इतने मूरख न होते, तो लात

क्यों खाते।' पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लाई थी। पाँच हाथ की दूरी से घूँघट की आड़ से दुखी की तरफ़ आग फेंकी। आग की बड़ी-सी चिनगारी दुखी के सिर पर पड़ गयी। वह जल्दी से पीछे हटकर सिर को झाड़ने लगा। उसके मन ने कहा - 'यह एक पवित्तर बाह्मन के घर को अपवित्तर करने का फल है। भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया। इसी से तो संसार पंडितो से डरता है। और सबके रुपये मारे जाते हैं, बाह्मन के रुपये भला कोई मार तो ले ! घर भर का सत्यानाश हो जाय, पाँव गल-गल कर गिरने लगें।'

बाहर आकर उसने चिलम पी और फिर कुल्हाड़ी लेकर जुट गया। खट-खट की आवाज़ें आने लगीं।

उस पर आग पड़ गई, तो पंडिताइन को उस पर कुछ दया आ गई। पंडितजी भोजन करके उठे, तो बोली - 'इस चमरवा को भी कुछ खाने को दे दो, बेचारा कब से काम कर रहा है। भूखा होगा।'

पंडितजी ने इस प्रस्ताव को व्यावहारिक क्षेत्र से दूर समझ कर पूछा - 'रोटियाँ हैं ?'

पंडिताइन - 'दो-चार बच जायँगी।'

पंडित - 'दो-चार रोटियों में क्या होगा ? चमार है, कम से कम सेर भर चढ़ा जायगा।'

पंडिताइन कानों पर हाथ रखकर बोलीं - 'अरे बाप रे ! सेर भर ! तो फिर रहने दो।'

पंडितजी ने अब शेर बनकर कहा - 'कुछ भूसी-चोकर हो तो आटे में मिलाकर दो-ठो ***लिट्टी*** ठोंक दो। साले का पेट भर जायगा। पतली रोटियों से इन नीचों का पेट नहीं भरता। इन्हें तो जुआर का लिट्टा चाहिए।'

पंडिताइन ने कहा - 'अब जाने भी दो, धूप में कौन मरे।'

लिट्टी - मोटी रोटी (टिक्कड़)

दुखी ने चिलम पीकर फिर कुल्हाड़ी सँभाली। दम लेने से ज़रा हाथों में ताकत आ गई थी। कोई आध घण्टे तक फिर कुल्हाड़ी चलाता रहा। फिर बेदम होकर वहीं सिर पकड़ के बैठ गया।

इतने में वही गोंड़ आ गया। बोला - 'क्यों जान देते हो बूढ़े दादा, तुम्हारे फाड़े यह गाँठ न फटेगी। ***नाहक हलकान*** होते हो।'

दुखी ने माथे का पसीना पोंछकर कहा - 'अभी तो गाड़ी भर भूसा और ढोना है भाई !'

गोंड़ - 'कुछ खाने को भी मिला कि काम ही कराना जानते हैं। जाके माँगते क्यों नहीं ?'

दुखी - 'कैसी बात करते हो चिखुरी, बाह्मन की रोटी हमको पचेगी !'

गोंड़ - 'पचने को पच जायगी, पर पहले मिले तो ! मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये। तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी-बहुत मजूरी देता है। यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं !'

दुखी - 'धीरे-धीरे बोलो भाई, कहीं सुन लें तो आफत आ जाय।'

यह कह कर दुखी फिर सँभल पड़ा और कुल्हाड़ी की चोट मारने लगा। चिखुरी को उस पर दया आई। आकर कुल्हाड़ी उसके हाथ से छीन ली और कोई आध घण्टे ख़ूब कस-कस कर कुल्हाड़ी

नाहक - बेकार में
हलकान - परेशान

चलाई, पर गाँठ में एक दरार भी न पड़ी। तब उसने कुल्हाड़ी फेंक दी और यह कह कर चला गया - 'तुम्हारे फाड़े यह न फटेगी, जान भले निकल जाय।'

दुखी सोचने लगा, 'बाबा ने यह गाँठ कहाँ रख छोड़ी थी कि फाड़े नहीं फटती। कहीं दरार तक भी तो नहीं पड़ती। मैं कब तक इसे चीरता रहूँगा। अभी घर पर सौ काम पड़े हैं। ***कार-परोजन*** का घर है, एक-न-एक चीज घटी ही रहती है। पर इन्हें इसकी क्या चिन्ता। चलूँ तब तक भूसा ही उठा लाऊँ। कह दूँगा, बाबा, आज तो लकड़ी नहीं फटी, कल आकर फाड़ दूँगा।'

उसने ***झौवा*** उठाया और भूसा ढोने लगा। खलिहान यहाँ से दो फरलाँग से कम न था। अगर झौवा खूब भर-भर कर लाता तो काम जल्दी खत्म हो जाता। लेकिन फिर झौवे को उठाता कौन? भरा हुआ झौवा अकेले उससे न उठ सकता था। इसलिए थोड़ा-थोड़ा लाता था। चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ। पंडितजी की नींद भी खुली। मुँह-हाथ धोया, पान खाया और बाहर निकले। देखा, तो दुखी झौवा सिर पर रखे सो रहा है। ज़ोर से बोले - 'अरे, दुखिया तू सो रहा है ? लकड़ी तो अभी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। इतनी देर तू करता क्या रहा ? मुट्ठी भर भूसा ढोने में संझा कर दी ! उस पर सो रहा है। उठा ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल। तुझसे ज़रा-सी

कार-परोजन - विवाह उत्सव, *झौवा* - टोकरा

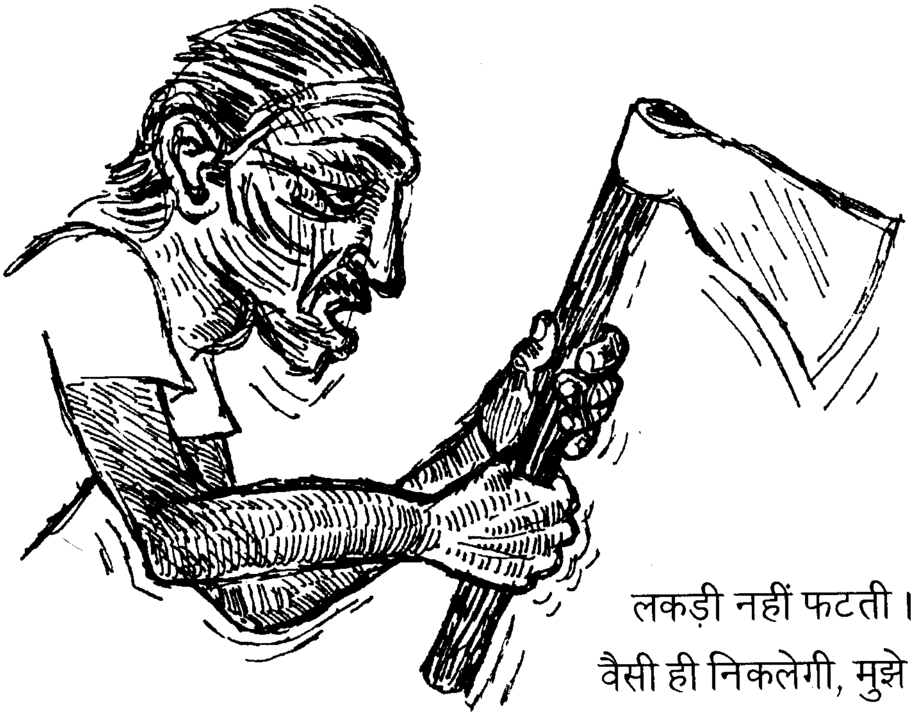

लकड़ी नहीं फटती। फिर साइत भी वैसी ही निकलेगी, मुझे दोष मत देना। इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसकी आँख बदली।

दुखी ने फिर कुल्हाड़ी उठाई। जो बातें पहले से सोच रखी थीं, वह सब भूल गईं। पेट पीठ में धँसा जाता था, आज सबेरे जलपान तक न किया था। अवकाश ही न मिला। उठना भी पहाड़ मालूम होता था। जी डूबा जाता था, पर दिल को समझाकर उठा। पंडित हैं, कहीं साइत ठीक न विचारें, तो फिर सत्यानाश ही हो जाय। जभी तो संसार में इतना मान है। साइत ही का तो सब खेल है। जिसे चाहे बिगाड़ दें। पंडितजी गाँठ के पास आकर खड़े हो गये और बढ़ावा देने लगे – 'हाँ, मार कसके, और मार कसके। मार, अबे ज़ोर से

मार। तेरे हाथ में तो जैसे दम ही नहीं है। लगा कसके, खड़ा सोचने क्या लगता है। हाँ, बस फटा ही चाहती है! दे उसी दरार में।'

दुखी अपने होश में न था। न जाने कौन-सी गुप्त शक्ति उसके हाथों को चला रही थी। वह थकान, भूख, कमजोरी, मानो सब भाग गई। उसे अपने बाहुबल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। एक-एक चोट वज्र की तरह पड़ती थी। आध घण्टे तक वह इसी उन्माद की दशा में हाथ चलाता रहा। यहाँ तक कि लकड़ी बीच से फट गई, और दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूट कर गिर पड़ी। इसके साथ वह भी चक्कर खा कर गिर पड़ा। भूखा, प्यासा, थका हुआ शरीर जवाब दे गया।

पंडितजी ने पुकारा - 'इसको दो-चार हाथ और लगा दे। पतली-पतली ***चैलियाँ*** हो जायें। दुखी न उठा। पंडितजी ने अब उसे ***दिक करना*** उचित न समझा। भीतर जाकर बूटी छानी, शौच गये, स्नान किया और पंडिताई बाना पहनकर बाहर निकले। दुखी अभी तक वहीं पड़ा हुआ था। ज़ोर से पुकारा - 'अरे क्या पड़े ही रहोगे दुखी ,चलो तुम्हारे ही घर चल रहा हूँ। सब सामान ठीक-ठीक है न ?' दुखी फिर भी न उठा।

अब पंडितजी को कुछ शंका हुई। पास जाकर देखा, तो दुखी

चैलियाँ - जलाने के लिए चिरी हुई लकड़ियाँ
दिक करना - परेशान करना

अकड़ा पड़ा हुआ था। बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बोले - 'दुखिया तो जैसे मर गया।'

पंडिताइन हकबकाकर बोली - 'वह तो अभी लकड़ी चीर रहा था न ?'

पंडित - 'हाँ, लकड़ी चीरते-चीरते मर गया। अब क्या होगा?'

पंडिताइन ने शान्त होकर कहा - 'होगा क्या, चमरौने में कहला भेजो कि मुर्दा उठा ले जायँ।'

एक क्षण में गाँव भर में खबर हो गई। पूरे में ब्राह्मनों की ही बस्ती थी, केवल एक घर गोंड का था। लोगों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया। कुएँ का रास्ता उधर से ही था, पानी कैसे भरा जाय! चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाय ! एक बुढ़िया ने पंडितजी से कहा - 'अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं। कोई गाँव में पानी पीयेगा या नहीं !'

इधर गोंड़ ने चमरौने में जाकर सबसे कह दिया - 'खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। ***दिल्लगी*** है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडितजी होंगे, तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़े जाओगे।'

इसके बाद ही पंडितजी पहुंचे। पर चमरौने का कोई आदमी लाश उठा लाने को तैयार न हुआ। हाँ, दुखी की स्त्री और कन्या,

---

दिल्लगी - मज़ाक

दोनों हाय-हाय करती वहाँ चली आयीं और पंडितजी के द्वार पर आकर सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। उनके साथ दस-पाँच और चमारिनें थीं। कोई रोती थी, कोई समझाती थी, पर चमार एक भी न था। पंडितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की। पर चमारों के दिल पर तो पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न भिनका। आख़िर निराश होकर पंडितजी लौट आये।

आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा। देवताओं का सोना मुश्किल हो गया। पर लाश उठाने कोई चमार नहीं आया। और ब्राह्मन चमार की लाश कैसे उठाते ! भला ऐसा किसी शास्त्र-पुराण में लिखा है ! कहीं कोई दिखा दे !

पंडिताइन ने झुँझला कर कहा - 'इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली। सबों का गला भी नहीं पकता।'

पंडित ने कहा - 'रोने दो चुड़ैलों को, कब तक रोयेंगी। जीता था, तो कोई बात तक न पूछता था। मर गया, तो कोलाहल मचाने के लिए सब की सब आ पहुँचीं।'

पंडिताइन - 'चमार का रोना मनहूस है।'

पंडित - 'हाँ, बहुत मनहूस।'

पंडिताइन - 'अभी से दुर्गन्ध उठने लगी।'

पंडित - 'चमार था ससुरा कि नहीं ! साध-असाध किसी का विचार है इन सबों को !'

पंडिताइन - 'इन सबों को घिन भी नहीं लगती।'

पंडित - 'भ्रष्ट हैं सब।'

रात तो किसी तरह कटी। मगर सबेरे भी कोई चमार न

आया। चमारिनें भी रो-पीटकर चली गईं। दुर्गन्ध कुछ-कुछ फैलने लगी।

पंडितजी ने एक रस्सी निकाली। उसका फन्दा बनाकर मुर्दे के पैर में डाला और फन्दे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुँधलका था। पंडित जी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।

उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन-पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।

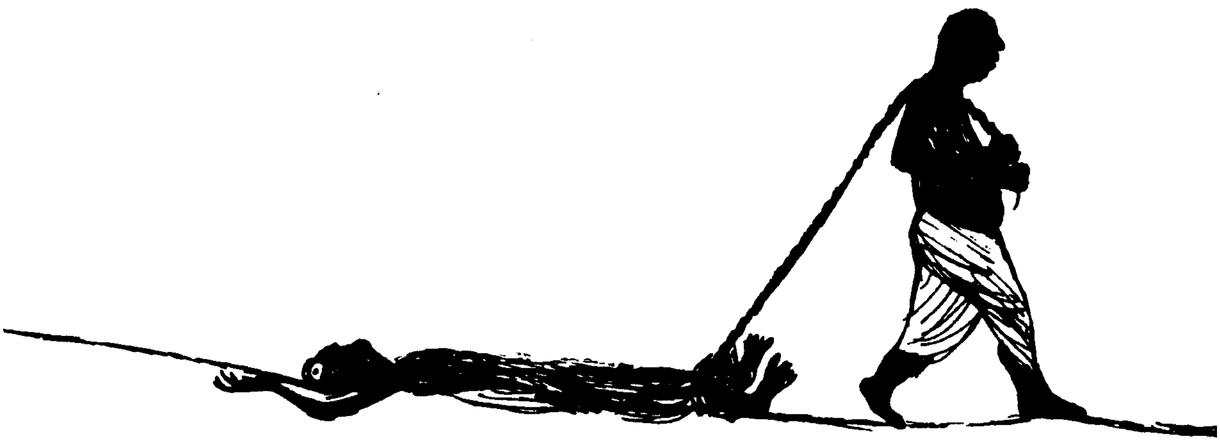

कैरेन हेडॉक

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क शहर में 20 फरवरी 1954 को जन्म। स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफेलो से बायोफिज़िक्स विषय में पी.एच.डी.। प्रिन्सटन विश्वविद्यालय, हार्वार्ड विश्वविद्यालय, माऊँट साइनाई स्कूल ऑफ मेडिकल रिसर्च आदि में शोध कार्य। सन 1985 से भारत में। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में अस्थाई रूप से कुछ समय बायोफिज़िक्स पढ़ाया। पढ़ाई के साथ–साथ चित्रकारिता सीखी। बच्चों , बड़ों और नवसाक्षरों की दर्जनों पुस्तकों एवं विभिन्न पत्रिकाओं के लिए चित्रकारिता। महिला संगठनों और सभी तरह के जनान्दोलनों में शिक्षाकर्मी, वैज्ञानिक, चित्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय। 1987 में नागार्जुन लोक सम्मान समारोह पर विदिशा में सार्वजनिक प्रदर्शनी।

सम्प्रतिः मुख्यतः शिक्षा में नवाचार और स्कूली शिक्षा में व्यापक सुधार के लिए होमी भाबा साइंस एजुकेशन सेंटर, मुम्बई और यूनेस्कों के प्रोजेक्टों में सहयोगी। समय–समय पर राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर की शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशालाओं में मुख्य भूमिका के रूप में हिस्सेदारी।